कबीर की कविता : सामाजिक चेतना

~ डॉ. अमरेन्द्र नाथ त्रिपाठी

(हिंदी विभाग, एसजीजीएस कॉलेज, पटना सिटी)

[कक्षा, स्नातक-प्रथमवर्ष(प्रतिष्ठा), में पढ़ाए गए को दुहराने (रिवीजन) के लिए यह आलेख]

भक्तिकाल के सभी कवि भक्त कवि हैं। वे अपने आराध्य के लिए भक्ति की कवितायेँ लिखते हैं। उनकी कविता उनकी भक्ति का जरिया है। लेकिन भक्तिकालीन कवियों के यहां अपने समाज से जुडी बातें भी देखी जा सकती हैं। वे भक्तकवि चाहे सगुण भक्ति के हों या निर्गुण भक्ति के। कबीर दास निर्गुण भक्त कवि बताये गए हैं। उनकी कविता में ऐसी ढेरों बातें हैं जो हमारे समाज से सम्बंधित हैं। कबीर की इन कविताओं से गुजरकर हमें पता चलता है कि उनका सामाजिक चिंतन या समाज-दर्शन कैसा था।

कबीर अपने समय के तार्किक व्यक्ति थे। सामाजिक व्यवस्था में जो दिखता था उसे वैसा ही मान लेने के बजाय वे तर्क करते थे। वे पूछते थे कि कोई चीज समाज में या लोगों के जीवन में चली आ रही है तो उसका आधार क्या है? इसके बने रहने में क्या लाभ-नुकसान है? उनके अंदर यह प्रतिभा थी कि सवाल पूछना और लोगों को उन सवालों से जोड़ना उन्हें आता था। इसीकारण हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कबीर के बारे में कहा है कि प्रतिभा उनमें बड़ी प्रखर थी इसमें कोई संदेह नहीं।

हमारा भारतीय समाज जातियों और धर्मों में बंटा हुआ समाज है। धर्म और जाति से जुड़े ढेरों उंच-नीच के विचार हमारे समाज के भीतर मौजूद हैं। लोग इन विचारों के अनुसार व्यवहार करते हैं। इस व्यवहार से मनुष्यों के साथ अन्याय भी होता है। कबीर कहते हैं कि सबको मनुष्य की तरह ही देखा जाय। वह किसी भी जाति या धर्म का हो! इंसान का गुण-अवगुण देखा जाय न कि उसकी जाति से उसका नाता जोड़कर उसे अच्छा-बुरा कहा जाय। उनका दोहा है:

जाति न पूछो साधु की
पूछ लीजिये ग्यान।
मोल करो तलवार का
पड़ी रहन दो म्यान।।

Dr. Amrendra Nath Tripathi / SGGS College

समाज में जो वर्ण व्यवस्था बहुत पहले से रही जिसके अनुसार ब्राह्मण खुद को सर्वश्रेष्ठ मानता आया है। शूद्र उसमें सबसे नीचे पायदान पर है। ब्राह्मण की श्रेष्ठता की विचारधारा जिसमें अन्य लोग वैसे ही मनुष्य नहीं माने जाते जैसे ब्राह्मण, ब्राह्मणवाद कहलाती है। इस ब्राह्मणवाद का विरोध कबीर के यहां है। इस विचारधारा से बने कर्मकांडों और कुरीतियों का विरोध भी कबीर करते हैं। इसमें मूर्तिपूजा, माला जपना, कंठी लटकाना आदि प्रमुख हैं। इसीलिये वे निर्गुण राम को महत्व देते हैं। वे कहते हैं, राम-राम जपने से क्या होगा, राम नाम का मर्म आना चाहिए: राम नाम को मरमु है आना! पंडित-वाद के झूठ को वे जाहिर करते हैं:

पंडित वाद बदंते झूठा
राम कहे दुनिया गति पावे, खांड कहे मुख मीठा!

मतलब, राम-राम रटने भर से अगर उत्तम गति मिलती है तो खांड यानी शक्कर कहने से मुंह मीठा हो जाना चाहिए।

हिन्दू धर्म की कुरीतियों के साथ ही कबीर ने मुस्लिम धर्म की कुरीतियों का भी विरोध किया। सच तो यह है कि उन्हें इस तरह धर्मों का व्यवहार अच्छा नहीं लगता। इस व्यवहार में लोग धर्म के मूल तत्त्व से अलग हो गए हैं। बस आडम्बर ही आडम्बर बचा है। जैसे हिन्दू या ब्राह्मण जप, माला, छापा, तिलक आदि में अपना धर्म समझता है वैसे ही मुसलमान भी मस्जिद के ऊपर चढ़ कर बांग देने में अपने धर्म की बड़ाई समझता है:

कंकड़ पत्थर जोड़ के
मस्जिद लियो बनाय।
ता चढ मुल्ला बांग दे
क्या बहरा हुआ खुदाय।

हिन्दू हो या मुसलमान दोनों सही रास्ते पर नहीं हैं। दोनों कुरीतियों की तरफ जा रहे हैं। दोनों पाखण्ड में जीते हैं। अपने-अपने कुकर्मों को दोनों नहीं देखते। बस अपने को श्रेष्ठ गिनाते रहते हैं। असलियत यह है कि इन दोनों को सही राह नहीं मिली है -- इन दोउन राह न पाई। दोनों के पाखण्ड को पेश करती उनकी पंक्तियाँ देखने लायक हैं:

जौ तू बाँभन बंभनी जाया
तो आन वाट है क्यों नहिं आया

Dr. Amrendra Nath Tripathi / SGGS College

जौ तू तुरक तुरकनी का जाया
तौ भीतर खतना काहे न कराया

कहने का आशय है कि प्राकृतिक या ईश्वरीय आधार पर हिन्दू या मुस्लिम एक ही हैं। इन्होने जो भी अंतर पैदा किया है, इनका खुद का पैदा किया है। जो इनकी अज्ञानता व मूर्खता का सूचक है।

कबीर ने समाज सुधारक की तरह सोचने का काम किया। समाज में जो-जो उन्हें समस्यामूलक लगा, उसका उन्होंने विरोध किया। राम-रहीम के नाम पर होने वाली लड़ाइयों को उन्होंने बेवकूफी बताया और पूछा कि ऐसी लड़ाई क्यों करते हो जब वह ईश्वर स्वयं कोई भेद नहीं करता, और सब जगह सामान भाव से समाया हुआ है:

राम रहीमा एकै है रे,
काहे करौ लड़ाई।
वह निरगुनिया अगम अपारा,
तीनहुँ लोक समाई।

समाज में धर्म और जाति का विभाजन ही नहीं है, लैंगिक विभाजन भी है। स्त्री को लेकर समाज के विचार काम पूर्वाग्रह से भरे नहीं हैं। अक्सर यह देखने में आता है कि कोई किसी भी जाति या धर्म का हो, वह स्त्री को लेकर संकुचित सोच का परिचय देता है। परम्परावादी समाज स्त्री को लेकर सही व्यवहार नहीं करता। कबीर की सोच भी इस मायने में परम्परावादी दिखाई देती है। वे नारी को वही स्थान नहीं दे पाते जो पुरुष को देते हैं। वे नारी के सम्बन्ध में कठोर बातें रखते हुए कहते हैं कि उससे पुरुष को दूर ही रहना चाहिए:

नारी की झांई पड़त,
अंधे होत भुजंग।
कबीर तिनकी कौन गति,
जो नित नारी के संग।।

उत्पीड़ित और गरीब के पक्ष में कबीर की कविता सहानुभूति पूर्ण दायित्व निभाती है। वे इस दृष्टि से बड़े मानवतावादी सिद्ध होते हैं। उनके इस पक्ष का उल्लेख करते हुए विद्वान् पारसनाथ तिवारी कहते हैं कि सच्ची बात यह है कि हिन्दी साहित्य में कबीर से बड़ा

Dr. Anirudha Nath Tripathi / SGGS College

मानवतावादी कोई नहीं हुआ। किसी भी दृष्टि से किसी दुर्बल को सताया हुआ वे नहीं देख सकते थे। उनका कहना था: दुर्बल को न सताइये जाकी मोटी हाय। अपनी सम्पन्नता को गर्व किसी को नहीं करना चाहिए। उस गर्व के मद में चूर होकर यह नहीं भूल जाना चाहिए कि यह सब नाशवान है। इसलिए सभी प्राणियों के साथ सौहार्द रखना चाहिए। जीवन की क्षणभंगुरता के प्रति सचेत करते हुए कबीर लोगों को सामजिक सन्देश भी देते हैं:

कबिरा गरब न कीजिये
ऊंचे देखि अवास।
काल्हि परे भुइँ लोटना
ऊपर जामै घास।।

कबीर ने इन महान बिचारों को पहले जीवन में जिया फिर लोगों को उपदेश के रूप में दिया। इसीलिये ये विचार इतने महत्वपूर्ण और ताकतवर हैं। समाज में जो दिक्कतें कबीर को दिखाई देती थीं, उनको लेकर वे बेचैन रहते थे। समस्याओं से मुंह मोड़ना उन्हें नहीं आता था। वे सामाजिक दशा पर विचार करते थे और परिवेश की समस्याओं को देखकर दुखी होते थे। उससे मुक्ति का उपाय ढूंढते थे। उन्होंने कहा भी है: दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै। इंसानियत की जमीन पर कबीर की सबसे बड़ी साधना यही थी कि उन्होंने अपने को जाति-धर्म आदि के बंधनो से मुक्त कर लिया था। इसीलिये वे बिना लागलपेट के ऐसी बातें कह सके। कबीर पहले स्वयं ऐसा हो सके थे, जो तब या अब भी आसान नहीं है। इस बात की पुष्टि के लिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की बात रखते हुए मैं इस आलेख को विराम दूंगा: "वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे। वे हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे। साधु होकर भी योगी नहीं थे, वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे।"

Dr. Amrendra Nath Tripathi / SOGS College